ईशानः सर्वदेवानाम्

पिछले अध्यायों में शिवतत्त्व का विवेचन वेदों, उपनिषदों, रामायणों, महाभारत, सभी महापुराणों तथा कुछ प्रमुख उपपुराणों आदि के संदर्भ में किया जा चुका है। उन विवरणों या विवेचनों से जो बातें उभरकर सामने आती हैं उन्हीं में से कुछ-एक की चर्चा यहाँ की जायगी। सभी ग्रन्थों में तीन प्रमुख देवों(ब्रह्मा, विष्णु एवं शिव) की तात्त्विक एकता का मत प्रतिपादित है। परन्तु सृष्टिव्यापार की प्रक्रिया में इन तीनों देवों की भूमिका तथा महत्ता अलग-अलग हो जाती है। उपासक अपनी रुचि, संस्कार या योग्यता तथा आवश्यकता के आधारपर इन देवों के किसी रूप को भी उपासना के लिये चुन सकता है।

त्रिदेवों की एकता

इस सृष्टि में अनेक ब्रह्माण्ड हैं तथा प्रत्येक ब्रह्माण्ड के उत्पादक, पालक तथा संहारक क्रमशः ब्रह्मा, विष्णु एवं शिव हैं। इस प्रकार इस सृष्टि में अनन्त ब्रह्मा, विष्णु एवं शिव होते हैं। परन्तु समस्त ब्रह्माण्डों के उत्पादक, पालक एवं संहारक जो महाब्रह्मा, महाविष्णु तथा सदाशिव हैं उनकी सत्ता पर ही ब्रह्माण्ड विशेष के ब्रह्मा, विष्णु तथा शिव की सत्ता निर्भर करती है। इन दो तरह के त्रिदेवों में भी समानता होती है अर्थात् तात्त्विक दृष्टि से ब्रह्माण्ड विशेष के ब्रह्मा, विष्णु एवं रुद्र तथा निखिल ब्रह्माण्ड के स्वामी ब्रह्मा, विष्णु एवं रुद्र में अभिन्न्ता होती है-भेद केवल अधिकारक्षेत्र का होता है तथा यह अधिकारक्षेत्र उनकी लीला का ही अंग होता है। वे एक दूसरे के अधिकारक्षेत्र में कोई व्यवधान नहीं उत्पन्न करते। उन सभी की क्रियाओं में पूर्ण सामञ्जस्य होता है क्योंकि वे सब एक ही परमशक्ति की योजना की अभिव्यक्तियाँ हैं। निर्गुण परमब्रह्म(या परमशक्ति) प्रकृति अथवा महामाया का आश्रय ले महाब्रह्मा, महाविष्णु तथा सदाशिव के रूप में निखिल ब्रह्माण्डों के जनक, पालक एवं संहारक का कार्य करते हैं। पहले रज, सत्त्व एवं तम के नियामक के रूप में ये तीनों महादेवताओं की अभिव्यक्ति होती है जिनसे बाद में अनेक ब्रह्माण्डों का जन्म होता है तथा उन ब्रह्माण्डों के नियमन के लिये ये तीनों महादेवता अपने को ही अनन्त रूपों में प्रकट करते हैं जो रूप, सामर्थ्य तथा आयुध आदि में समान होते हैं। परमब्रह्म या तत्त्व या परमशक्ति को ही कोई सदाशिव, कोई महाविष्णु तो कोई महादेवी तो कोई गणपति आदि कहते हैं। उस तत्त्व के अनन्त नाम एवं रूप हैं। भक्त अपनी रुचि एवं संस्कार के अनुसार उसे नाम एवं रूप विशेष की संज्ञा देते हैं।

परात्पर सच्चिदानन्द परमेश्वर शिव एक हैं, वे विश्वातीत हैं और विश्वमय भी हैं। वे गुणातीत हैं और गुणमय भी हैं। जब वे अपने अद्वितीय स्वरूप में स्थित रहते हैं, तब विश्वरूपी खेल की जननी प्रकृतिदेवी उनमें विलीन रहती है, वह बाह्य क्रियारहित होने से दीखती नहीं है। पुनः जब वही शान्त शिव अपनी शक्ति को व्यक्त करते हैं तो वह उन्हीं को विविध रूपों में प्रकट कर देती है। एक ही देव विविधरूप धारणकर अपने आप ही अपने-आप से खेलते हैं। जैसे हम स्वप्न की अवस्था में अपने

को अनेक रूपों में बाँटकर सपने के उन रूपों के साथ व्यवहार करते हैं उसी प्रकार ब्रह्म भी अपने द्वारा उत्पन्न नाना रूपों के साथ व्यवहार करता है अथवा लीला करता है। सृष्टि की अवस्था में शिव एवं शक्ति दोनों की लीला चलती है। यही परात्पर परमेश्वर शिव, महाशिव, महाविष्णु, महाशक्ति, गोकुल बिहारी श्रीकृष्ण, साकेताधिपति राम आदि नाम-रूपों से प्रसिद्ध हैं। परमात्मा शिव ही भिन्न-भिन्न सर्ग और महासर्गों में भिन्न-भिन्न नाम-रूपों से अपनी परात्परता को प्रकट करते हैं। जहाँ जटाजूटधारी श्रीशिवरूप सबके आदि उत्पन्नकर्त्ता और सर्वपूज्य अथवा उपास्य हैं तथा अन्य नाम-रूपधारी उपासक हैं, वहाँ वे शिव ही परात्पर महाशिव हैं तथा अन्यान्य देव उनसे अभिन्न होनेपर भी उन्हीं के स्वरूप से प्रकट, नाना रूपों और नामों से प्रसिद्ध होते हुए सत्त्व-रज-तम गुणों को लेकर आवश्यकतानुसार कार्य करते हैं। उस महासर्ग में भिन्न-भिन्न ब्रह्माण्डों में बह्मा, विष्णु, रुद्रादि देवता भिन्न-भिन्न होनेपर भी सब उन एक ही परात्पर महाशिव के उपासक हैं। इसी प्रकार किसी अन्य सर्ग या महासर्ग में महाविष्णु रूप परात्पर होते हैं और अन्य देवता उनसे प्रकट होते हैं, किसी में ब्रह्मा-रूप, किसी में महाशक्ति-रूप, किसी में श्रीकृष्ण रूप और किसी में श्रीरामरूप परात्पर बह्म होते हैं तथा अन्यान्य स्वरूप उन्हीं से प्रकट होकर उनकी उपासना करते और उनके अधीन सृष्टि, पालन एवं विनाश की विविध लीलाएँ करते हैं। इस तरह एक ही प्रभु भिन्न-भिन्न रूपों में प्रकट होकर उपास्य-उपासक, स्वामी-सेवक, राजा-प्रजा, शासक-शासित रूप से लीला करते हैं।

सभी अठारह महापुराण एक ही महर्षि वेदव्यास द्वारा रचे हुए माने जाते हैं फिर भी उनमें सृष्टि की उत्पत्ति के वर्णन में विभिन्नता पायी जाती है। शैव पुराणों में शिव से, वैष्णव पुराणों में विष्णु, कृष्ण या राम से और शाक्त पुराणों में देवी से सृष्टि की उत्पत्ति बतलायी गयी है। इसका क्या कारण है? इस प्रश्न पर मूल तत्त्व की ओर लक्ष्य रखकर गम्भीरता से विचार करने पर स्पष्ट हो जाता है कि सृष्टि की उत्पत्ति के क्रम में भिन्न-भिन्न पुराणों के वर्णन में भेद रहने पर भी वस्तुतः मूलसिद्धान्त में कोई खास भेद नहीं है। क्योंकि प्रायः सभी कोई नाम-रूप बदलकर आदि में प्रकृति-पुरुष से ही सृष्टि की उत्पत्ति बतलाते हैं। वर्णन में भेद होने अथवा प्रतीत होने के कई कारण हो सकते हैं। जैसे मूलतत्त्व एक होनेपर भी प्रत्येक महासर्ग के आदि में सृष्टिउत्पत्ति का क्रम सदा एक सा नहीं रहता। चूँकि पुराणों में भिन्न-भिन्न महासर्गों का वर्णन है, इससे वर्णन में भेद होना स्वाभाविक है। इसी तरह महासर्ग और सर्ग के आदि में सृष्टिउत्पत्ति-क्रम में भेद रहता है। ग्रन्थों में कहीं महासर्ग का तो कहीं सर्ग का वर्णन है, इसलिये उनमें अन्तर हो सकता है। सृष्टि की उत्पत्ति, पालन और संहार के क्रम का रहस्य सूक्ष्म एवं दुर्विज्ञेय है, इसे समझानें के लिये नाना प्रकार के रूपकों से उदाहरण वाक्यों द्वारा नाम-रूप बदलकर भिन्न-भिन्न प्रकार से सृष्टि की उत्पत्ति आदि का रहस्य बतलाने की चेष्टा की गयी है। इस तात्पर्य को न समझने के कारण भी विभिन्न ग्रन्थों के वर्णन में विशेष भेद प्रतीत होता है।

यहाँ एक बात ध्यान में रखनी चाहिये कि सृष्टि, पालन एवं संहार करनेवाले, परात्पर से प्रकट

त्रिदेव उनसे अभिन्न और पूर्ण शक्तियुक्त होते हुए भी तीनों भिन्न-भिन्न प्रकार की क्रिया करते हैं तथा तीनों की शक्तियाँ भी अपने-अपने कार्य के अनुसार सीमित ही देखी जाती हैं। यहाँ हमें यह नहीं समझना चाहिये कि परात्पर परब्रह्म शिव के अन्य सब (भिन्न-भिन्न) रूप काल्पनिक हैं। सभी रूप भगवान् के होने के कारण नित्य, शुद्ध और दिव्य हैं। प्रकृति के द्वारा रचे जानेवाले विश्वप्रपंच के विनाश होनेपर भी इनका विनाश नहीं होता, क्योंकि ये प्रकृति की सत्ता से परे स्वयं प्रभु परमात्मा के स्वरूप हैं।

नित्यधाम के शिव-शक्ति, विष्णु-लक्ष्मी, ब्रह्मा-सावित्री, कृष्ण-राधा और राम-सीता ही समय-समय पर अवताररूप से प्रकट होकर बाह्य लीला करते हैं। ये सब एक ही परमतत्त्व के अनेक नित्य और दिव्यस्वरूप हैं। अवतारों में, कभी तो परात्पर स्वयं अवतार लेते हैं और कभी सीमित शक्ति से कार्य करनेवाले त्रिदेवों में से किसी का अवतार होता है। जहाँ दण्ड और मोह की लीला होती है, वहाँ दण्डित एवं मोहित होनेवाले अवतारों को त्रिदेवों में से तथा दण्डदाता और मोह उत्पन्न करनेवाले को परात्पर प्रभु समझना चाहिये, जैसे नृसिंहरूप को शरभरूप के द्वारा दण्ड दिया जाना और शिवस्वरूप का विष्णु द्वारा मोहिनी-रूप से मोहित होना आदि। कहीं-कहीं परात्पर के साक्षात् अवतार में भी ऐसी लीला देखी जाती है, परन्तु उसका गूढ़ रहस्य कुछ और ही होता है जो उनकी कृपा से ही समझ में आ सकता है।

कुछ लोग शिव को तामसी देव मानकर उनकी उपासना में दोष समझते हैं। वास्तव में यह उनका भ्रम है, जो बाह्य दृष्टिवाले साम्प्रदायिक आग्रही मनुष्यों का पैदा किया हुआ है। जिन भगवान् शिव का गुणगान वेदों, उपनिषदों और वैष्णव कहे जानेवाले पुराणों में भी गाया गया है, उन्हें तामसी बताना अपने तमोगुणी होने का ही परिचय देना है। परात्पर महाशिव तो सर्वथा गुणातीत हैं, वहाँ तो गुणों की क्रिया ही नहीं है। जिस गुणातीत, नित्य, दिव्य साकार चैतन्य रस-विग्रह स्वरूप में क्रिया है, उसमें भी गुणों का खेल नहीं है। भगवान् की दिव्य प्रकृति ही वहाँ क्रिया करती है। और जिन त्रिदेव-मूर्तियों में सत्त्व, रज और तम की लीलाएँ होती हैं, उनमें भी उनका स्वरूप गुणों की क्रिया के अनुसार नहीं है। अपितु भिन्न-भिन्न क्रियाओं के कारण उनपर सत्त्व, रज और तम का आरोप है। वस्तुतः ये तीनों दिव्य चेतन-विग्रह गुणातीत ही हैं।

ब्रह्मा, विष्णु और शिव एक ही हैं। एक ही अक्षर पुरुष के तीन रूप हैं, एक ही शक्ति के तीन व्यापार हैं-दृष्टिमात्र का भेद है। इस सृष्टि में एक ही बिन्दु पर तीनों शक्तियाँ रहती हैं, किन्तु कार्यवश कभी भिन्न-भिन्न स्थान भी ग्रहण कर लेती हैं। चेतन प्राणियों में विशेषकर शक्तियों का स्थान-भेद देखा जाता है। जैसे मनुष्य-शरीर के अन्तर्गत हृदय कमल में ब्रह्मा, नाभि में विष्णु तथा मस्तक में शिव की स्थिति मानी गयी है।

शिव के उपासक निर्गुण ब्रह्म को सदाशिव; सर्वव्यापी, निराकार, सगुण ब्रह्म को महेश्वर; सृष्टि के उत्पन्न करनेवाले को ब्रह्मा; पालनकर्त्ता को विष्णु और संहारकर्ता को रुद्र कहते हैं और इन पाँचों को ही शिव का रूप बतलाते हैं। भगवान् विष्णु के प्रति भगवान् शिव कहते हैं-

त्रिधाभिन्नो ह्यहंविष्णोब्रह्मविष्णुहराख्यया।
सर्गरक्षालयगुणैर्निष्कलोऽपि सदा हरे।।

.....

वस्तुतः सर्वदृश्यं च शिवरूपं मतं मम ।।
अहं भवानयं चैव रुद्रोऽयं यो भविष्यति ।
एकं रूपं न भेदोऽस्ति भेदे च बन्धनं भवेत् ।।
तथापीह मदीयं वै शिवरूपं सनातनम् ।
मूलभूतं सदा प्रोक्तं सत्यं ज्ञानमनन्तकम् ।।

(शिवपु. रुद्रसं. सृष्टिखण्ड 9/28, 38-40 तथा कल्याण, शिवांक पृ. 62)

"हे विष्णो! हे हरे! मैं स्वभाव से निर्गुण होता हुआ भी संसार की रचना, स्थिति एवं प्रलय के लिये क्रमशः ब्रह्मा, विष्णु और रुद्र-इन तीन रूपों में विभक्त हो रहा हूँ। ..... वस्तुतः दृश्य पदार्थ मात्र शिवरूप ही हैं, ऐसा मेरा मत है। मैं, आप, ये ब्रह्माजी और आगे चलकर मेरी जो रुद्रमूर्ति उत्पन्न होगी-ये सब एकरूप ही हैं, इनमें कोई भेद नहीं है। भेद ही बन्धन का कारण है। फिर भी यहाँ मेरा यह शिवरूप नित्य, सनातन एवं सबका मूलस्वरूप कहा गया है। यही सत्य, ज्ञान एवं अनन्तरूप गुणातीत परब्रह्म है।"

साक्षात् महेश्वर के इन वचनों से उनका निर्गुणरूप, सर्वव्यापी, सगुण निराकाररूप और ब्रह्मा, विष्णु, रुद्ररूप-ये पाँचों सिद्ध होते हैं। यही सदाशिव पंचवक्त्र हैं।

इसी प्रकार विष्णु के उपासक निर्गुण परात्पर ब्रह्म को महाविष्णु; सर्वव्यापी, निराकार, सगुण ब्रह्म को वासुदेव तथा सृष्टि, पालन और संहार करनेवाले रूपों को क्रमशः ब्रह्मा, विष्णु और महेश कहते हैं। महर्षि पराशर भगवान् विष्णु की स्तुति करते हुए कहते हैं-

अविकाराय शुद्धाय नित्याय परमात्मने।
सदैकरूपरूपाय विष्णवे सर्वजिष्णवे।।

.....

सर्गस्थितिविनाशानां जगतो यो जगन्मयः।
मूलभूतो नमस्तस्मै विष्णवे परमात्मने ।।
आधारभूतं विश्वस्याप्यणीयांसमणीयसाम् ।
प्रणम्य सर्वभूतस्थमच्युतं पुरुषोत्तमम् ।। (विष्णु पु. 1/2/1, 4, 5)

"निर्विकार, शुद्ध, नित्य, परमात्मा, सर्वदा, एकरूप, सर्वविजयी .....। इस संसार की उत्पत्ति, पालन एवं विनाश करनेवाले ब्रह्मा, विष्णु, महेश के भी मूलकारण, जगन्मय उस सर्वव्यापी भगवान् वासुदेव परमात्मा को मेरा नमस्कार है। विश्वाधार, सूक्ष्म से भी अति सूक्ष्म, सर्वभूतों के अन्दर रहनेवाले, अच्युत, पुरुषोत्तम भगवान् को मेरा प्रणाम है।"

उपरोक्त उद्धरण में निर्विकार, नित्य, शुद्ध परमात्मा का निर्गुण स्वरूप समझना चाहिये। वही सगुण होनेपर सृष्टि करता है फलस्वरूप ब्रह्मा, विष्णु एवं रुद्रदेव उत्पन्न होते हैं। इस प्रकार यहाँ भी श्रीविष्णु के पाँच रूप सिद्ध होते हैं।

इसी तरह महाशक्ति भगवती की स्तुति करते हुए देवगण कहते हैं कि-

सृष्टिस्थितिविनाशानां शक्तिभूते सनातनि।
गुणाश्रये गुणमये नारायणि नमोऽस्तु ते।।

(मार्कण्डेय पु., देवीमाहात्म्य 11/11, संक्षिप्त मार्कण्डेय-ब्रह्मपुराणांक, कल्याण गीताप्रेस पृ. 227)

"ब्रह्मा, विष्णु और महेश के रूप से सृष्टि की उत्पत्ति, पालन और विनाश करनेवाली हे सनातनी शक्ति! हे गुणाश्रये! हे गुणमयी नारायणी देवी! तुम्हें नमस्कार हो।"

स्वयं भगवान् कृष्ण कहते हैं-

त्वमेव सर्वजननी मूलप्रकृतिरीश्वरी।
त्वमेवाद्या सृष्टिविधौ स्वेच्छया त्रिगुणात्मिका।।
कार्यार्थे सगुणा त्वं च वस्तुतो निर्गुणा स्वयम्।
परब्रह्मस्वरूपा त्वं सत्या नित्या सनातनी।।

..... (ब्रह्मवै.पु. प्रकृतिख. 66/7-8)

"तुम्हीं विश्वजननी, मूल-प्रकृति ईश्वरी हो, तुम्हीं सृष्टि की उत्पत्ति के समय आद्याशक्ति के रूप में विराजमान रहती हो और स्वेच्छा से त्रिगुणत्मिका बन जाती हो। यद्यपि तुम स्वयं निर्गुण हो तथापि प्रयोजनवश सगुण हो जाती हो। तुम परब्रह्मस्वरूप सत्य, नित्य एवं सनातनी हो.....।"

इस उद्धरण में महाशक्ति के भी निर्गुण, सगुण तथा त्रिदेवों के स्वरूपधारण करने से पाँच रूप सिद्ध होते हैं।

इसी प्रकार ब्रह्माजी के बारे में कहा गया है कि-

जय देवातिदेवाय त्रिगुणाय सुमेधसे।
अव्यक्तजन्मरूपाय कारणाय महात्मने।।
एतत्त्रिभावभावाय उत्पत्तिस्थितिकारक।
रजोरूपगुणाविष्ट सृजसीदं चराचरम्।।
सत्त्वपाल महाभाग तमः संहरसेऽखिलम्। (देवी पुराण अध्याय-83/12-14)

"आपकी जय हो। उत्तम बुद्धिवाले, अव्यक्त-व्यक्तरूप, त्रिगुणमय, सबके कारण, विश्व की उत्पत्ति, पालन एवं संहारकारक ब्रह्मा, विष्णु और महेशरूप तीनों भावों से भावित होनेवाले महात्मा देवाधिदेव ब्रह्मदेव के लिये नमस्कार है। हे महाभाग! आप रजोगुण से आविष्ट होकर हिरण्यगर्भरूपसे चराचर संसार को पैदा करते हैं तथा सत्त्वगुणयुक्त होकर विष्णुरूप से पालन करते हैं एवं तमोमूर्ति

धारण करके रुद्ररूप से सम्पूर्ण संसार का संहार करते हैं।"

उपरोक्त वचनों से ब्रह्माजी के भी परात्पर ब्रह्मसहित पाँचों रूपों का होना सिद्ध होता है। इसी तरह भगवान् राम के प्रति कहा गया है–

एकस्त्वं पुरुषः साक्षात् प्रकृतेः पर ईर्यसे।
यः स्वांशकलया विश्वं सृजत्यवति हन्ति च।।
अरूपस्त्वमशेषस्य जगतः कारणं परम्।
एक एव त्रिधा रूपं गृह्णासि कुहकान्वितः।।
सृष्टौ विधातृरूपस्त्वं पालने स्वप्रभामयः।
प्रलये जगतः साक्षादहं शर्वारव्यतां गतः।। (पद्मपु. पाता. 46/6-8)

"आप प्रकृति से अतीत साक्षात् अद्वितीय पुरुष कहे जाते हैं, जो अपनी अंशकला के द्वारा ब्रह्मा, विष्णु, रुद्ररूप से विश्व की उत्पत्ति, पालन एवं संहार करते हैं। आप अरूप होते हुए भी अखिल विश्व के परम कारण हैं। आप एक होते हुए भी माया–संवलित होकर त्रिविध रूप धारण करते हैं। संसार की सृष्टि के समय आप ब्रह्मारूप से प्रकट होते हैं, पालन के समय स्वप्रभामय विष्णुरूप से व्यक्त होते हैं और प्रलय के समय रुद्र का रूप धारण कर लेते हैं।"

इसी प्रकार श्रीकृष्ण के परब्रह्म परमात्मा होने का विविध ग्रन्थों में उल्लेख है। ब्रह्मवैवर्त पुराण में श्रीकृष्ण के बारे में कहा गया है कि–

विश्वं विश्वेश्वरेशं च विश्वेशं विश्वकारणम्।
विश्वाधारं च विश्वस्तं विश्वकारणकारणम्।।
विश्वरक्षाकारणं च विश्वघ्नं विश्वजं परम्।
फलबीजं फलाधारं फलं च तत्फलप्रदम्।। (ब्रह्मवै. पु. ब्रह्मखं. 3/24-25)

"आप विश्वरूप हैं, विश्व के स्वामी हैं, नहीं नहीं, विश्व के स्वामियों के स्वामी हैं, विश्व के कारण हैं, कारण के भी कारण हैं, विश्व के आधार हैं, विश्वस्त हैं, विश्वरक्षक हैं, विश्व का संहार करनेवाले हैं और नाना रूपों से विश्व में अविर्भूत होते हैं। आप फलों के बीज हैं, फलों के आधार हैं, फलस्वरूप हैं और फलदाता हैं।"

गीता में भी भगवान् कृष्ण को परब्रह्म (14/27), उत्पत्ति–प्रलयरूप, सबका आधार (9/18), लोकों का महान् ईश्वर (10/3) आदि कहा है।

ऊपर के इन सब अवतरणों से यह सिद्ध होता है कि भगवान् शिव, विष्णु, ब्रह्मा, शक्ति, राम, कृष्ण, तत्त्वतः एक ही हैं। सभी प्रकार के उपासक एक सत्य, विज्ञानानन्दघन परमात्मा को मानकर सच्चे सिद्धान्तपर ही चल रहे हैं। नाम–रूप का भेद है, परन्तु वस्तु–तत्त्व में कोई भेद नहीं। सबका लक्ष्यार्थ एक ही है।

विज्ञानानन्दघन, सर्वव्यापी परमात्मा शिव के तत्त्व को न जानने के कारण ही कुछ शिवोपासक भगवान् विष्णु की और कुछ वैष्णव भगवान् शिव की निन्दा करते हैं। कोई-कोई यदि निन्दा और द्वेष नहीं भी करते हैं तो प्रायः उदासीन से तो रहते ही हैं। परन्तु इस प्रकार के व्यवहार वस्तुतः ज्ञानरहित समझे जाते हैं। यदि यह कहा जाय कि ऐसा न करने से एकनिष्ठ अनन्य उपासना में दोष आता है, तो वह ठीक नहीं है। जैसे पतिव्रता स्त्री एकमात्र अपने पति को ही इष्ट मानकर उसकी आज्ञानुसार उसकी सेवा करती हुई, पति के माता-पिता, गुरुजन तथा अतिथि और पति के अन्यान्य संबंधी और प्रेमी बन्धुओं की भी पति की आज्ञानुसार पति की प्रसन्नता के लिये यथोचित आदरभाव से मन लगाकर विधिवत् सेवा करती है और ऐसा करती हुई भी वह अपने एकनिष्ठ पातिव्रत-धर्म से जरा भी न गिरकर उल्टे शोभा और यश को प्राप्त होती है। वास्तव में दोष पाप-बुद्धि, भोग-बुद्धि और द्वेष-बुद्धि में है अथवा व्यभिचार और शत्रुता में है। यथोचित वैध-सेवा तो कर्त्तव्य है। इसी प्रकार परमात्मा के किसी एक नाम-रूप को अपना-अपना परम इष्ट मानकर उसकी अनन्यभाव से भक्ति करते हुए ही अन्यान्य देवों की अपने इष्टदेव की आज्ञानुसार उसी स्वामी की प्रीति के लिये श्रद्धा और आदर के साथ यथायोग्य सेवा करनी चाहिये।

उपर्युक्त अवतरणों के अनुसार जब एक नित्य विज्ञानानन्दघन ब्रह्म ही हैं तथा वास्तव में उनसे भिन्न कोई दूसरी वस्तु ही नहीं है, तब किसी एक नामरूप से द्वेष या निन्दा, तिरस्कार और उपेक्षा करना उस परब्रह्म से ही वैसा करना है। कहीं भी न श्रीशिव या विष्णु ने या श्रीब्रह्मा ने एक दूसरे की निन्दा आदि करने के लिये किसी से कहा है; बल्कि निंदा आदि का निषेध और तीनों को एक मानने की प्रशंसा की है। शिव पुराण[1] में कहा गया है कि-

एते परस्परोत्पन्ना धारयन्ति परस्परम्।
परस्परेण वर्धन्ते परस्परमनुव्रताः।।
क्वचिद्ब्रह्मा क्वचिद्विष्णुः क्वचिद्रुद्रः प्रशस्यते।
नानेव तेषामाधिक्यमैश्वर्यञ्चातिरिच्यते।।
अयं परस्त्वयं नेति संरम्भाभिनिवेशिनः।
यातुधाना भवन्त्येव पिशाचा वा न संशयः।।

"ये तीनों(ब्रह्मा, विष्णु और शिव) एक दूसरे से उत्पन्न हुए हैं, एक दूसरे को धारण करते हैं, एक दूसरे के द्वारा वृद्धिगत होते हैं, और एक दूसरे के अनुकूल आचरण करते हैं। कहीं ब्रह्मा की प्रशंसा की जाती है, कहीं विष्णु की और कहीं महादेव की। उनका उत्कर्ष एवं ऐश्वर्य एक दूसरे की अपेक्षा इस प्रकार अधिक कहा है मानों वे अनेक हों। जो संशयात्मा मनुष्य यह विचार करते हैं कि अमुक बड़ा है और अमुक छोटा है वे अगले जन्म में राक्षस अथवा पिशाच होते हैं, इसमें कोई सन्देह नहीं है।"

1. कल्याण, शिवांक पृ. 66

स्वयं भगवान् शिव श्रीविष्णुजी से कहते हैं-

मद्दर्शनेफलं यद्वै तदेव तव दर्शने।।
ममैव हृदये विष्णुर्विष्णोश्च हृदयेह्यहम्।।
उभयोरन्तरं यो वै न जानाति मतो मम।

(शिवपु. रु. सं. सृ. खं. 9/54-56 तथा कल्याण शिवांक पृ. 66)

"मेरे दर्शन का जो फल है वही आपके दर्शन का है। आप मेरे हृदय में निवास करते हैं और मैं आपके हृदय में रहता हूँ। जो हम दोनों में भेद नहीं समझता वही मुझे मान्य है।"

भगवान् राम श्रीशिवजी से कहते हैं कि-

ममास्ति हृदये शर्वो भवतो हृदये त्वहम्।
आवयोरन्तरं नास्ति मूढाः पश्यन्ति दुर्धियः।।
ये भेदं विदधत्यद्धा आवयोरेकरूपयोः।
कुम्भीपाकेषु पच्यन्ते नराः कल्पसहस्रकम्।।
ये त्वद्भक्ताः सदासंस्ते मद्भक्ता धर्मसंयुताः।
मद्भक्ता अपि भूयस्या भक्त्या तव नतिङ्कराः।।

(संक्षि. पद्मपु. पाता. ख. 46/20-22 गीताप्रेस गोरखपुर)

"आप(शंकर) मेरे हृदय में रहते हैं और मैं आपके हृदय में रहता हूँ। हम दोनों में कोई भेद नहीं है। मूर्ख एवं दुर्बुद्धि मनुष्य ही हमारे अन्दर भेद समझते हैं। हम दोनों एकरूप हैं, जो मनुष्य हमारे अन्दर भेद-भावना करते हैं वे हजार कल्पपर्यन्त कुम्भीपाक नरकों में यातना सहते हैं। जो आपके भक्त हैं वे धार्मिक पुरुष सदा ही मेरे भक्त रहे हैं और जो मेरे भक्त हैं वे प्रगाढ़ भक्ति से आपको भी प्रणाम करते हैं।"

इसी प्रकार भगवान् श्रीकृष्ण भी शिवजी से कहते है-

त्वत्परो नास्ति मे प्रेयांस्त्वं मदीयात्मनः परः।
ये त्वां निन्दन्ति पापिष्ठा ज्ञानहीना विचेतसः।।
पच्यन्ते कालसूत्रेण यावच्चन्द्रदिवाकरौ।
कृत्वा लिङ्गं सकृत्पूज्य वसेत्कल्पायुतं दिवि।
प्रजावान् भूमिमान् विद्वान् पुत्रबान्धववांस्तथा।।
ज्ञानवान्मुक्तिमान् साधुः शिवलिङ्गार्चनाद्भवेत्।
शिवेति शब्दमुच्चार्य प्राणांस्त्यजति यो नरः।।
कोटिजन्मार्जितात् पापान्मुक्तो मुक्तिं प्रयाति सः।

(ब्रह्मवै. पु. ब्रह्मख. अध्याय 6/31-32, 46-47, 49-50)

"मुझे आपसे बढ़कर कोई प्यारा नहीं है, आप मुझे अपनी आत्मा से भी अधिक प्रिय हैं। जो पापी, अज्ञानी एवं बुद्धिहीन पुरुष आपकी निन्दा करते हैं, वे जबतक चन्द्र और सूर्य का अस्तित्व रहेगा तबतक कालसूत्र(नरक) में पचते रहेंगे। जो शिवलिंग का निर्माण कर एक बार भी उसकी पूजा कर लेता है, वह दस हजार कल्पतक स्वर्ग में निवास करता है। शिवलिंग के अर्चन से मनुष्य को प्रजा, भूमि, विद्या, पुत्र, बान्धव, श्रेष्ठता, ज्ञान एंव मुक्ति सब कुछ प्राप्त हो जाता है। जो मनुष्य 'शिव' शब्द का उच्चारण कर शरीर छोड़ता है वह करोड़ों जन्मों के संचित पापों से छूटकर मुक्ति को प्राप्त हो जाता है।"

श्रीरामचरितमानस में भगवान् श्रीराम ने कहा है-

संकरप्रिय मम द्रोही सिव द्रोही मम दास।
ते नर करहिं कलप भरि घोर नरक महुँ बास।। (लंका कां. 2)
औरउ एक गुपुत मत सबहि कहउँ कर जोरि।
संकर भजन बिना नर भगति न पावइ मोरि।। (उत्तर का. 45)

ऐसी अवस्था में जो मनुष्य दूसरे के इष्टदेव की निन्दा या अपमान करता है, वह वास्तव में अपने ही इष्टदेव का अपमान करता है। परमात्मा की प्राप्ति से पहले परमात्मा का यथार्थ रूप न जानने के कारण भक्त अपनी समझ के अनुसार अपने उपास्यदेव का जो स्वरूप कल्पित करता है, वास्तव में उपास्यदेव का स्वरूप उससे अत्यन्त विलक्षण होता है, तथापि उसकी अपनी बुद्धि, भावना तथा रुचि के अनुसार की हुई सच्ची और श्रद्धायुक्त उपासना को परमात्मा सर्वथा सर्वांश में स्वीकार करते हैं। क्योंकि ईश्वर-प्राप्ति के पूर्व ईश्वर का यथार्थ स्वरूप किसी के भी चिन्तन में नहीं आ सकता। अतएव परमात्मा के किसी भी नाम-रूप की निष्काम-भाव से उपासना करनेवाला पुरुष उस नित्य परमात्मा को प्राप्त हो जाता है।

वास्तव में हरि एवं हर(अथवा कोई अन्य इष्ट) में तात्त्विक दृष्टि से कोई भेद नहीं है। और न ही कोई किसी से छोटा या बड़ा है। इनमें केवल दृष्टि का भेद है। उपासक के अधिकार और रुचि के अनुसार किसी भी रूप में प्रधान-दृष्टि की जा सकती है। पुराणादि में जो कहीं किसी की और कहीं किसी की प्रधानता लिखी है, वह भी उस अधिकारी का मनोभाव उसरूप में दृढ़ करने के लिये-उसी रूप में 'ब्रह्मदृष्टि' कराने के उद्देश्य से है। किसी के वास्तविक उत्कर्ष वा अपकर्ष का कहीं भी तात्पर्य नहीं है।

नहि निन्दा निन्द्यान् निन्दितुं प्रवर्तते, अपितु स्तुत्यान् स्तोतुम्।

अर्थात्-निन्दा निन्दनीय की निन्दा के उद्देश्य से नहीं होती, अपितु स्तुत्य की स्तुति के उद्देश्य से होती है।

भगवान् शिव एवं अन्य देवों में कोई छोटा-बड़ा नहीं होता। अपने-अपने कार्य के सभी प्रभु हैं। यह उपासक की इच्छा और अधिकार के अनुसार नियत है कि वह किसी भी रूप को अपनी

उपासना के लिये चुन ले, किन्तु किसी को छोटा-बड़ा कहना या निन्दा करना उचित नहीं है।

सर्वधर्मोपपत्तेश्च (ब्रह्मसूत्र 2/1/37) – इस वेदान्तसूत्र के अनुसार सभी गुण, कर्म और नाम उस ब्रह्म के ही हैं। अतः उपासना किसी भी नाम-रूप की की जा सकती है बशर्ते हम अपने उपास्य में उपरोक्त ब्रह्म दृष्टि रक्खें।

रामेश्वर-स्थापना के पश्चात् एक बार विष्णु और शिव के परस्पर पूजन को देखकर विस्मित हो नारदजी ने शिव और विष्णु में कौन बड़ा है-इस बात को जानने के लिये श्रीरामजी से पूछा कि महाराज! 'रामेश्वर' पद में कौन समास है? तब नारदजी की चतुराई समझकर श्रीरामजी ने उत्तर दिया कि रामेश्वर-पद में षष्ठी तत्पुरुष है अर्थात् रामस्य ईश्वरः रामेश्वरः (राम के जो ईश्वर हैं वही रामेश्वर हैं)। यह सुनकर नारदजी कैलास पहुँचे और वहाँ जाकर शिवजी से भी यही प्रश्न किया। शिवजी ने उत्तर दिया कि रामेश्वर-पद में बहुव्रीहि समास है, अर्थात् "राम एव ईश्वरो यस्य स रामेश्वरः" (राम ही जिसके ईश्वर हैं वही रामेश्वर है)। इस उत्तर से नारदजी की शंका और बढ़ी और उन्होंने ब्रह्माजी के पास पहुँचकर उनसे भी यही प्रश्न किया। श्रीब्रह्माजी ने उत्तर दिया कि रामेश्वर-पद में कर्मधारय समास है, अर्थात् "रामश्चासौ ईश्वरः रामेश्वरः" (राम ही ईश्वर हैं, इसी से ये रामेश्वर कहलाते हैं)। सारांश यह कि जिस प्रकार 'नीलकमल' पद में नील और कमल दोनों भिन्न नहीं हैं उसी प्रकार राम और ईश्वर (शिवजी) भी अभिन्न हैं। अर्थात् राम और शिव दोनों एक ही हैं, उनमें कोई अन्तर नहीं है।

भगवान् के असंख्य नाम एवं रूप हैं परन्तु मनुष्य उन असंख्य नाम-रूपों से प्रेम या भक्ति नहीं कर सकता। प्रेम या भक्ति एक से ही होती है और प्रेम के प्रकट हो जानेपर वह अनेक को एक कर देता है। अनेक में एक को यथार्थतः देखना और एक में ही अनेक को कल्पित देखना-यही सत्य है, पूर्ण है और प्रेम है। शिव अनेक होते हुए भी एक हैं। उनकी ऐसी अनुभूति ही उनकी भक्ति है। इसी प्रकार अन्य देवों के बारे में ऐसी दृष्टि रखना उन-उन देवों की भक्ति कहलाती है।

हरि, हर अथवा अन्य किसी भी उपास्यरूपों में तात्त्विक भेद नहीं होता। भेद केवल उनकी बाहरी क्रिया, रूप और नाम में होता है। जैसे भिन्न-भिन्न नाटकों में एक ही अभिनेता नाना रूप धारण करता है परन्तु वस्तुतः वह जो है सो वही रहता है।

हरिहरयोः प्रकृतिरेका प्रत्ययभेदेन रूपभेदोऽयम्।
एकस्यैव नटस्यानेकविधा भूमिकाभेदात्।। (कल्याण, शिवांक, पृ 112 से उद्धृत)

अर्थात्-हरि और हर में मूलतः भेद नहीं है। प्रत्यय[1] में ही भेद होता है। नाटक में अभिनेता नाना रूप धारण करता है, परन्तु वस्तुतः वह जो है सो वही रहता है।

1. हरि और हर दोनों शब्दों की प्रकृति (वास्तविक तत्त्व; 'हृ' धातु) एक ही है। परन्तु प्रत्यय (विश्वास; 'इ' एवं 'अ' प्रत्यय) के भेद से रूपभेद हो जाता है। अर्थात् व्याकरण की दृष्टि से दोनों शब्द एक ही धातु से बने हैं तथा उनके अर्थ भी समान हैं तथापि दोनों शब्दों के बाह्य रूप में भेद है।

त्रिदेवो में न कोई छोटा होता है न कोई बड़ा। यदि कोई मनुष्य विभिन्न भावों(जैसे पिता, पति नौकर आदि) के साथ विभिन्न कार्यों को करता है तो क्या उसके व्यक्तित्व में भिन्नता आ जाती है? यदि नहीं आती तो इन त्रिदेवों में भिन्नता क्यों आने लगी? ब्रह्मा उसी समयतक ब्रह्मा हैं जबतक सृष्टि-रचना करते हैं। विष्णु सृष्टि के पालनतक ही विष्णु कहे जायँगे और महादेवजी सृष्टि के नाश करनेतक रुद्र नाम से पुकारे जायँगे। इसके पश्चात् वे तीनों ही एक रूप हो जाते हैं। अतएव उनमें भिन्नता नहीं है।

वैष्णव-सिद्धान्त के अनुसार जगत्-कार्य के लिये छः प्रकार के अवतार होते हैं- पुरुषावतार, लीलावतार, युगावतार, मनवन्तरावतार, शक्त्यावेशावतार और गुणावतार। इनमें शिव गुणावतार हैं। ये सत्वगुण को अंगीकारकर सदाशिवरूप से शिवलोक में अवस्थान-पूर्वक ज्ञानियों को ज्ञानदान, योगियों को योग-शिक्षा एवं भक्तों को निज आचरणद्वारा भक्ति-उपदेश करते हैं, एवं तमोगुण का आश्रयकर रुद्ररूप से सृष्टि-संहार का कार्य करते हैं। परमतत्त्व श्रीकृष्ण के साथ शिव का भेदाभेदसम्बन्ध है। निर्गुण-अवस्था में ये और श्रीकृष्ण एक ही हैं, अर्थात् निजानन्द-प्रदान द्वारा समस्त चराचर का सर्वदा कल्याण करने के कारण तत्वतः श्रीकृष्ण ही सदाशिव स्वरूप हैं; और सगुण-दशा में भक्तावतार होने के कारण श्रीकृष्ण से इनकी भिन्न प्रतीति होती है। चैतन्य महाप्रभु ने श्रीसनातन गोस्वामी को शिक्षा देते समय यही उपदेश दिया था। चैतन्य महाप्रभु के अनुसार भगवान् जब कला या अंशरूप से स्वयं अवतीर्ण होते हैं, तब स्वांशअवतार कहे जाते हैं, और जब किसी अधिकारी जीव को शक्ति-संचार कर भेजते हैं, तब वह विभिन्नांश-अवतार कहाता है। श्रीशिव स्वांश-अवतार हैं अर्थात् इनकी गणना ईश्वर कोटि में है।

अब यहाँ एक प्रश्न यह उठता है कि शिव यदि ईश्वर हैं, कृष्ण एवं विष्णु से अभिन्न हैं, तो वैष्णव-ग्रन्थों में जो इस प्रकार के वचन पाये जाते है कि-

यस्तु नारायणं देवं ब्रह्मरुद्रादिदैवतैः।
समत्वेनैव वीक्षते स पाषण्डी भवेत्सदा।। (कल्याण, शिवांक, पृ. 175 से उद्घृत)

अर्थात्-नारायणदेव को जो ब्रह्मा, रुद्रादि देवताओं के 'समान' देखता है वह मनुष्य पाषण्डी होता है-इनका क्या तात्पर्य है? इसका उत्तर यह है कि यहाँ समान शब्द से पृथक् ईश्वर-बुद्धि से अभिप्राय है, अर्थात् नारायण को एक पृथक् ईश्वर मानना तथा शिवादि को एक-एक पृथक् ईश्वर मानना; यह बहु-ईश्वरवादरूप पाषण्ड-मत है। इसीलिये वैष्णव-स्मृति श्रीहरिभक्तिविलास के नामापराध-प्रकरण में लिखा है-

शिवस्य श्रीविष्णोर्य इह गुणनामादि सकलं।
धिया भिन्नं पश्येत्स खलु हरिनामाहितकरः।। (कल्याण, शिवांक, पृ. 175)

अर्थात्-जो मनुष्य शिव एवं विष्णु के गुण-नाम आदि में भेद-बुद्धि रखता है वह हरिनाम

का अपराधी है।

पद्मपुराण जैसे कई सात्त्विक या वैष्णवपरक ग्रन्थों में कहीं-कहीं पर हमें इस प्रकार के वचन भी प्राप्त होते हैं जो साम्प्रदायिकता से प्रेरित होते हैं। इसी प्रकार शैव कहे जानेवाले ग्रन्थों में भी ऐसे वचन मिलते हैं जिन्हें साम्प्रदायिक कहा जा सकता है। ऐसे साम्प्रदायिक स्थलों की कई बार ऐसी व्याख्या संभव होती है जिससे साम्प्रदायिकता समाप्त हो जाती है जैसा हमने ऊपर के श्लोक में देखा। परन्तु हर जगह इस तरह की व्याख्या संभव नहीं हो पाती। ऐसे स्थलों पर ग्रन्थों में मिलावट होती है। इस मिलावट की पहचान समग्र ग्रन्थ के अन्दर निहित सम्पूर्ण विचारधारा के साथ उसकी तुलना करने पर हो सकती है। उदाहरण के लिये पद्म पुराण में एक स्थल(उत्तरखण्ड 236/22) पर कहा गया है कि तामस पुराणों (शैव-पुराणों) के सुनने से नरक की प्राप्ति होती है।[1] इस विचार को उस पुराणस्थ अन्य स्थलों, जहाँ शिव एवं विष्णु की एकता प्रदर्शित की गयी है, से तुलना करें तो स्पष्ट हो जाता है कि यह बात मिलावटी है क्योंकि शिव एवं विष्णु के अभेद होने से उनसे संबंधित ग्रन्थों में भी समानता होगी अर्थात् उनके पढ़ने से वही फल प्राप्त होगा जो वैष्णव या सात्त्विक पुराणों से होगा।

कहीं-कहीं ऐसा भी आता है कि वैष्णव शिवलिंग को नमस्कार न करें। परन्तु इसका अर्थ यह नहीं है कि वैष्णव का शंकर से द्वेष है। इसका तात्पर्य यह है कि वैष्णवों के मस्तकपर ऊर्ध्वपुण्ड्र का जो तिलक रहता है, उसमें विष्णु के दो चरणों के बीच में लक्ष्मीजी का लाल रंग का चिन्ह(श्री) रहता है। लक्ष्मीजी को शिवलिंग के पास जाने में लज्जा आती है। अतः वैष्णवों के लिये शिवलिंग को नमस्कार करने का निषेध आया है(देखें शिवोपासनांक पृ. 108)। परन्तु तिलक लगाने से पहले वह शिवलिंग की पूजा तथा नमस्कार कर सकता है। पुनः शंकरजी की प्रतिमा के लिये ऐसा कोई निषेध वैष्णव ग्रन्थों में नहीं मिलता। कई बार उपरोक्त निषेध का साम्प्रदायिक अर्थ भी लिया जाता है क्योंकि सृष्टि का निर्माण करनेवाली सर्वोच्च शक्ति की पितारूप में कल्पना करके लिंग को उसके प्रतीक के रूप में पूजा जाता है। वैदिक काल में लिंग सर्वोच्च शक्ति महादेव का प्रतीक था। सृष्टि के प्रारंभ में ब्रह्मा एवं विष्णु के विवाद के दौरान जो ज्योतिर्मय लिंग प्रकट हुआ था वह त्रिदेववाले रुद्र का नहीं अपितु परात्पर ब्रह्म का लिंग अथवा प्रतीक था जो ॐकार मय था। यहाँ लिंग का अर्थ जननेन्द्रिय नहीं है। अतः लक्ष्मीजी को शिवलिंग के सामने आने में लज्जा तभी आयेगी जब उसे जननेन्द्रिय माना जाय। पुराणों में देवदारु वन में शिवलिंग के पतन की कथा अथवा भृगु के शाप की कथा के आधार पर कई लोग शिवलिंग पूजा को शिव-जननेद्रिय की पूजा मानने लगे। यों तो शैव एवं वैष्णव सभी

1. स्वयं भगवान् शिव के मुख से पार्वती देवी के प्रति कहलवाया गया है कि-

सात्विकामोक्षदाः प्रोक्ताराजसाः सर्वदाशुभाः।।

तथैवतामसादेविनिरयप्राप्ति हेतवः। (पद्म. पु. उ. ख. 236/21-22)

अर्थात्-सात्त्विक पुराणों से मोक्ष, राजसिक से शुभ तथा तामस से नरक की प्राप्ति होती है। तामस पुराणों में भगवान् शिव का, राजस में ब्रह्मा का तथा सात्त्विक में विष्णु की महिमा का वर्णन होता है।

ग्रन्थों में समय के साथ-साथ साम्प्रदायिक मिलावटें की गयी हैं, उनसे हमें सावधान रहना चाहिये। इन मिलावटों की पहचान तत्संबंधी ग्रन्थ या ग्रन्थों की सम्पूर्ण विचारधारा के साथ तुलना कर की जा सकती है।

ब्रह्म के शिवस्वरूप की विशेषता

'भगवान् शिव के तत्त्व को कोई नहीं जानता (**न सन्ति याथार्थ्यविदः पिनाकिनः ;** कुमार. **5/77**)'- कालिदास की इस उक्ति का समर्थन भीष्म पितामह भी करते हैं। भीष्म पितामह से नीति, धर्म और मोक्ष के सूक्ष्म से सूक्ष्म रहस्य का विवेचन सुनते हुए महाराज युधिष्ठिर ने जब शिव-महिमा के सम्बन्ध में प्रश्न किया तो वृद्ध पितामह ने भी यही उत्तर दिया था कि-

अशक्तोऽहं गुणान् वक्तुं महादेवस्य धीमतः।
यो हि सर्वगतो देवो न च सर्वत्र दृश्यते ।। (महा. अनु. 14/3)

"जो सबमें रहते हुए भी कहीं किसी को दिखायी नहीं देते, उन महादेव के गुणों का वर्णन करने में मैं सर्वथा असमर्थ हूँ।"

'मैं असमर्थ हूँ', इतना ही कहकर भीष्मपितामह को सन्तोष नहीं हुआ, किन्तु साथ ही उन्होंने यह भी स्पष्ट कर दिया कि मनुष्य देह-धारी कोई भी महादेव की महिमा नहीं कह सकता-

को हि शक्तो गुणान् वक्तुं देवदेवस्य धीमतः।
गर्भजन्मजरायुक्तो मर्त्यो मृत्युसमन्वितः।। (महा. अनु. 14/7)

आगे भीष्मजी ने युधिष्ठिर को निराश होते देख यों धैर्य दिलाया कि इस सभा में साक्षात् विष्णु के अवतार श्रीकृष्ण उपस्थित हैं, वे शिव की महिमा कह सकते हैं, साथ ही स्वयं भगवान् कृष्ण से प्रार्थना की कि आप युधिष्ठिर और सब ऋषि-मुनि आदि को शिव-महिमा सुनावें। भगवान् श्रीकृष्ण ने भी यहाँ से प्रारम्भ किया कि 'हिरण्यगर्भ, इन्द्र, महर्षि आदि भी शिवतत्त्व को जानने में असमर्थ हैं, मैं उनके कुछ गुणों का ही व्याख्यान करता हूँ।' (महा. अनु. 14/22-24)

उपरोक्त उद्धरणों के अलावा शास्त्रों में हमें अनेक उद्धरण प्राप्त होते हैं जिनमें शिव की महिमा को अवर्णनीय कहा गया है। ऐसा होनेपर भी हम यहाँपर उनकी शास्त्रसम्मत कुछ विशेषताओं की ओर ध्यान दिलाना चाहेंगे।

यह सम्पूर्ण ब्रह्माण्ड शिव का ही शरीर है। शिव के शरीर इस ब्रह्माण्ड में विष और अमृत-दोनों हैं। विष भी कहीं बाहर नहीं, शिव के शरीर में ही है। किन्तु वे विष को गुप्त-अन्तर्लीन रखते हैं और अमृत को प्रकट करते हैं। जो उपासक शिव के शरीररूप से जगत् को देखते हैं, उनकी दृष्टि में अमृत ही आता है, विष विलीन रहता है। अतएव शंकर की साकार मूर्ति में विष गले के भीतर है, और अमृतमय चन्द्रमा स्पष्टरूप से शिरपर विराजमान है। ईश्वर को शास्त्रों ने 'विरुद्ध धर्माश्रय' माना है; जो धर्म हमें परस्पर विरुद्ध प्रतीत होते हैं वे सब ईश्वर में अविरुद्ध होकर रहते हैं। सभी विरुद्ध धर्मों को

ब्रह्माण्ड में ही तो रहना है? और ब्रह्माण्ड ठहरा ईश्वर शरीर। यह भाव सगुण साकार शिव की कल्पना में स्पष्ट है, वहाँ अमृत भी है, विष भी; अग्नि(शिव का एक नेत्र) भी है और जल(गंगा) भी।

शिव के अंगों में जगह-जगह साँप लिपटे हुए रहते हैं। इसका स्थूल अभिप्राय यह है कि मंगल और अमंगल सब कुछ ईश्वर-शरीर में है। दूसरा अभिप्राय यह भी है कि संहारकारक शिव के पास संहार की समाग्री भी रहनी चाहिये। समयपर उत्पादन और समयपर संहार-दोनों ईश्वर के कार्य हैं। सर्प से बढ़कर संहारक तमोगुणी अन्य कोई नहीं है क्योंकि यह अपने बच्चे को भी खा जाता है। भगवान् के कर्पूर के समान उज्ज्वल वर्ण की कल्पना की जाती है। व्यापक ईश्वर चेतन अर्थात् ज्ञानरूप है। ज्ञान को 'प्रकाश' कहते हैं और उसका वर्ण श्वेत होता है। श्वेत वर्ण कृत्रिम नहीं, स्वाभाविक होता है। श्वेत पर और-और रंग चढ़ते हैं और धोकर उतार दिये जाते हैं। श्वेत पहले भी रहता है और पीछे भी। इससे श्वेत वर्ण नैसर्गिक सिद्ध होता है। शिव का श्वेत वर्ण यह बताता है कि ईश्वर का कृत्रिम रूप नहीं है, सब रूप उसमें उत्पन्न होते हैं और लीन हो जाते हैं, वह स्वभावतः एक रूप है या यों कहें कि कृत्रिम रूपों से वर्जित है।

वैज्ञानिक दृष्टि से श्वेत कोई रंग नहीं है। सब रंग-रूपों के समुदाय को श्वेत कहते हैं। सब रूपों या रंगों को जब मिलाया जाय तब वे यदि सब-के-सब मूर्च्छित हो जाँय तो काला रूप बनता है और सब जाग्रत रहें तो श्वेत प्रतीत होता है। यही स्थिति ईश्वर की है। जगत् के सब रूप उसी में ओत-प्रोत हैं किन्तु भेद छोड़कर। भेद अविद्याकृत है। ईश्वर में सभी कुछ अभिन्न रूप से है इसलिये उसे श्वेत कहा गया है।

किसी भी रंग के पदार्थ को जलाने के बाद अन्त में श्वेत भस्म ही शेष रहता है। अतः भस्म मौलिक तत्त्व है, इसे अग्नि नहीं समाप्त कर सकती। भगवान् शिव इसी मौलिक तत्त्व-भस्म से सदा उद्धूलित रहते हैं। इसी मौलिक तत्त्व से वे सृष्टि की रचना करते हैं(यह शिव पुराण में वर्णित सृष्टि-प्रक्रिया में स्पष्ट है)।

कुछ लोग शिव को संहारकर्त्ता कहकर उपासना के योग्य नहीं मानते। किन्तु वैज्ञानिक दृष्टि से यह तर्क ठीक नहीं है। क्योंकि एक दृष्टि से जो संहार है, वही दूसरी दृष्टि से उत्पादन एवं पालन है। इन सबमें नाममात्र का भेद है। दूसरे शब्दों में सृष्टि, पालन एवं संहार ये तीनों सापेक्ष हैं निरपेक्ष नहीं। पेड़ का कटना(या संहार) ही लकड़ी के सामान बनाने(सृजन) का आधार होता है। एक की मृत्यु ही दूसरे के जन्म का आधार और तीसरे के पालन का आधार बन सकती है।

इसके अतिरिक्त सृष्टि की भाँति संहार भी तो ईश्वर का कार्य है। और वह अवश्यम्भावी है। समयपर उत्पादन और पालन जैसे नियत हैं, वैसे ही संहार भी नियत है। सृष्टि, पालन तथा संहार तीनों कार्य ईश्वर के द्वारा ही होते हैं। यदि एक ही शक्ति तीनों कार्यों की करनेवाली न मानी जाय तो तार्किक दृष्टि से उसमें कठिनाई आ जायगी। अगर संहार करनेवाला कोई और है तो वह पालक से

जबर्दस्त कहा जायगा – क्योंकि वह उसके पालित को नष्ट कर देता है। ऐसी स्थिति में संहारक ही ईश्वर कहलायेगा, पालक नहीं। इसके अतिरिक्त जो सबका संहार करनेवाला होगा वही तो अन्त में शेष रहेगा, फिर सृष्टि के समय सृष्टि भी वही करेगा। क्योंकि उस समय दूसरा कोई है ही कहाँ, जो सृष्टि करे? इन सब तर्कों का समाधान तभी होगा जबकि एक ही ईश्वर शिव के कार्यापेक्षा से तीनों रूप माने जायँ – उनमें भेद न माना जाय। जिस समय जिस – जिस रूप वा शक्ति की आवश्यकता होती है, उस समय वह उसी – उसी रूप वा शक्ति में प्रकट हो जाता है, तत्त्व एक ही है।

फिर भी कहा जाय कि तत्त्व चाहे एक हो, किन्तु संहारकारक रूप से हमें ध्यान नहीं करना चाहिये – तो यह युक्ति भी निःसार है। सब रूपों के उपासक अपने उपास्य में सभी शक्तियों का ध्यान करते हैं क्योंकि किसी भी शक्ति को उपास्य में विद्यमान न मानने से उसके ईशत्व में कमी आ जायगी। ईश्वर का कार्य यथासमय सब कार्य(सृष्टि से संहारतक) करना है। शिव न केवल जगत् एवं जीवन का विनाश करते हैं अपितु दुष्टों, विपत्तियों, दर्दों, अज्ञान आदि का भी विनाश करते हैं। अशुभ का विनाश ही शुभ का सृजन है। अतः विनाशक ही सर्जक भी होता है।

कई बार शिव की उपासना को उन्हें तमोगुणी कहकर नकारा जाता है। इस भ्रम का हमने पहले भी निराकरण किया है। शिव ईश्वर हैं, वे तमोगुण के वश में नहीं हो सकते। ईश्वर और जीव में यही तो भेद है कि जीव प्रकृति के गुणों के वश में होता है और ईश्वर प्रकृति का नियन्ता होता है। ऐसी हालत में 'शिव तमोगुणी' हैं – इसका अभिप्राय यह है कि वे तमोगुण के नियन्ता हैं। ऐसी स्थिति में सत्त्वगुण के नियमन करने की अपेक्षा तमोगुण के नियमन का कार्य कितना कठिन है और वैसा कार्य करनेवालारूप और भी उत्कृष्ट होना चाहिये – इसका विचारशील स्वयं निर्णय करें।

कुछ लोग भगवान् शंकर पर श्रद्धा रखते हैं परन्तु उन्हें मुक्तिदाता न मानकर लौकिक फलदाता ही समझते हैं और प्रायः लौकिक कामनाओं की सिद्धि के लिये ही उनकी भक्ति या पूजा करते हैं। इसमें कोई सन्देह नहीं कि परम उदार आशुतोष सदाशिव में दया की लीला का विशेष प्रकाश होने के कारण वे भक्तों को मनमानी वस्तु देने के लिये सदा ही तैयार रहते हैं, परन्तु इससे इन्हें मुक्तिदाता न समझना भूल है। जब भगवान् शिव के स्वरूप का तत्त्वज्ञान ही मुक्ति है, तब उन्हें मुक्तिदाता न मानना सिवा भ्रम के और क्या हो सकता है?[1] भगवान् शिव शुद्ध, सनातन, विज्ञानान्दघन परब्रह्म हैं, उनकी उपासना परमलाभ के लिये ही या उनकी भक्ति या प्रेम प्राप्त करने के लिये ही करनी चाहिये। सांसारिक हानि – लाभ प्रारब्धवश होते रहते हैं, इनके लिये चिन्ता करने की आवश्यकता नहीं। शंकर की शरण लेने से कर्म शुभ और निष्काम हो जायँगे, जिससे अपने आप ही संसारिक कष्टों का नाश हो जायगा और पूर्वकृत कर्मों के शेष रहनेतक कष्ट होते भी रहें तो क्या आपत्ति है।

---

1. **"नमामीशमीशान निर्वाणरूपं विभुं व्यापकं ब्रह्मवेदस्वरूपं।"** तुलसीदास के रामायण(उत्तरकाण्ड 107 ख/1) में वर्णित इस स्तुति के प्रथम श्लोक में ही उन्हें 'निर्वाणरूप' माना गया है।

शिव के उपासक में जगत् के भोगों के प्रति वैराग्य होना चाहिये। विषय-भोगों में जिनका चित्त आसक्त है, वे परमपद के अधिकारी नहीं हो सकते और उनका पतन ही होता है। ऐन्द्रिय विषयों को प्राप्त करके अथवा विषयों से भरपूर जीवन में रहकर उनसे सर्वथा निर्लिप्त रहना जनक-सरीखे इने-गिने पूर्वाभ्यास-सम्पन्न पुरुषों का ही कार्य है। अनुभव तो यह है कि विषयों के संग तो क्या, उनके विचार या चिन्तन-मात्र से मन में विकार उत्पन्न हो जाते हैं। शिवजी विषय माँगनेवाले को विषय और मोक्ष माँगनेवाले को मोक्ष दे देते हैं। वे कल्प वृक्ष हैं। मुँहमाँगा वरदान देनेवाले हैं। यह याद रखना चाहिये कि शिवजी स्वयं कल्याणस्वरूप ही हैं, इससे उनकी उपासना से उपासक का कल्याण बहुत ही शीघ्र हो जाता है। सिर्फ विश्वास करके लग जानेमात्र की देर है। भगवान् के दूसरे स्वरूप बहुत छान-बीन के अनन्तर फल देते हैं, परंतु औढरदानी शिव तत्काल फल दे देते हैं।

औढरदानी या आशुतोष का यह अर्थ नहीं करना चाहिये कि शिवस्वरूप में बुद्धि या विवेक की कमी है। ऐसा मानना तो प्रकारान्तर से उनका अपमान करना है। बुद्धि या विवेक के उद्गम- स्थान ही भगवान् शिव हैं। उन्हीं से बुद्धि एवं विद्या प्राप्त कर समस्त देव, ऋषि आदि अपने-अपने कार्यों में लगे रहते हैं। ब्रह्म के अलग-अलग रूपों में कुछ अपनी-अपनी विशेषताएँ रहती हैं। शंकररूप में यही विशेषता है कि वे बहुत शीघ्र प्रसन्न होते हैं और भक्तों की मनोकामना-पूर्ति के समय वे भोले-से बन जाते हैं। परन्तु जब संहार का अवसर आता है तब रुद्र बनते भी उन्हें देर नहीं लगती।

शिव को भोलानाथ मानकर कुछ लोग उन्हें गँजेड़ी, भँगेड़ी, नशेबाज और बावला समझकर उनका उपहास करते हैं। विनोद से भक्त सब कुछ कह सकते हैं और भक्त का आरोप भगवान् स्वीकार भी कर लेते हैं। परन्तु जो वस्तुतः शिव को पागल, श्मशानवासी, औघड़, नशेबाज आदि समझते हैं, वे गहरी भूल में हैं। शंकर का श्मशाननिवास, उनकी उन्मत्तता, उनका विषपान, उनका सर्वांगीपन आदि बहुत गहरे रहस्य को लिये हुए हैं, जिसे श्रीशिव की कृपा से शिव-भक्त ही समझ सकते हैं(उनके उस तरह के कुछ व्यवहारों के रहस्यों की चर्चा पुराणों-संबंधी अध्यायों में आ चुकी हैं)।

जैसे व्यभिचारप्रिय भगवान् श्रीकृष्ण की रासलीला को व्यभिचार का रूप देकर प्रकारान्तर से अपने व्यभिचारदोष का समर्थन करते हैं, इसी प्रकार सदाचारहीन, अवैदिक क्रियाओं में रत नशेबाज मनुष्य शिव के अनुकरण का ढोंग रचकर अपने दोषों का समर्थन करना चाहते हैं। वस्तुतः शिवभक्त को सदाचारपरायण रहकर गाँजा, भाँग आदि नशे, तथा अपवित्र वस्तुओं के सेवन, अपवित्र आचरण आदि से बचते रहना चाहिये- यही शंकर का आदेश है।

भगवान् शिव की परात्पर ब्रह्म के रूप में उपासना करनेवाले के लिये तो वे परब्रह्म हैं ही पर अनान्य भगवत्स्वरूपों के उपासकों के लिये वे मार्गदर्शक परमगुरु अवश्य हैं। श्रीमद्भागवत महापुराण(4/4/27) में श्रीशिव को 'जगद्गुरु' कहा गया है। इससे स्पष्ट हो जाता है कि शिव जगद्गुरु हैं। शास्त्रों का आदेश है कि गुरु की प्राप्ति तथा उनकी कृपा बिना इष्टदेव की प्राप्ति नहीं

हो सकती है। इसका तात्पर्य है कि जबतक मनुष्य श्रीशिवजी को प्रसन्नकर उनकी कृपा का पात्र नहीं बन जाता, तबतक उसे इष्ट-साक्षात्कार नहीं हो सकता। गोस्वामी तुलसीदास इस गुरु-तत्त्व के रहस्य[1] का वर्णन करते हुए 'मानस' के प्रारम्भ में कहते हैं-

भवानीशङ्करौ वन्दे श्रद्धाविश्वासरूपिणौ।
याभ्यां विना न पश्यन्ति सिद्धाः स्वान्तः स्थमीश्वरम्।।
वन्दे बोधमयं नित्यं गुरुं शङ्कररूपिणम्।
यमाश्रितो हि वक्रोऽपि चन्द्रः सर्वत्र वन्द्यते।। (बाल कां. श्लोक 2-3)

भगवान् राम ने अपने श्रीमुख से स्वयं कहा है-

होइ अकाम जो छल तजि सेइहि।
भगति मोरि तेहि संकर देइहि।। (लंका का. 2/2)
औरउ एक गुपुत मत सबहि कहउँ कर जोरि।
संकर भजन बिना नर भगति न पावइ मोरि।। (उत्तरकाण्ड 45)

इस प्रकार भगवान् विष्णु के भक्त के लिये भी सद्गुरुरूप से शिव की उपासना आवश्यक है। अन्य वैष्णव ग्रन्थों में भी इसका यथेष्ट उल्लेख है। पुनः शक्ति के उपासक शक्तिमान् शिव को कैसे छोड़ सकते हैं? शिव के बिना अकेली शक्ति की उपासना अधूरी रहती है। गणेश तो शिव के पुत्र ही हैं। पुत्र की पूजा करें और पिता का अपमान करें, यह शिष्ट मार्यादा कभी नहीं हो सकती। अतः गणेश उपासक भी शिवोपासना की उपेक्षा नहीं कर सकते। सूर्यदेव तो भगवान् शिव के तेजोलिंग के ही नामान्तर हैं। सूर्यदेव भगवान् शिव की अष्टमूर्तियों में से एक हैं अतः उनकी पूजा करनेवाले भी शिव की ही पूजा करते हैं। इसके सिवा अन्यान्य मतावलम्बियों के लिये भी कम-से-कम श्रद्धा-विश्वासरूप शक्ति-शिव की आवश्यकता रहती ही है। योगियों के लिये तो परमयोगीश्वर शिव की आराधना आवश्यक है ही। ज्ञान के साधक न्याय, वैशेषिक, वेदान्त आदि दर्शन परम-कल्याणरूप शिव की प्राप्ति चाहते हैं। तन्त्र तो शिवोपासना के लिये ही बना है। ऐसी अवस्था में जिस किसी भी दृष्टि से शिव को परम परात्पर परमात्मा, महाज्ञानी, महान् विद्वान्, योगीश्वर, देवदेव, जगद्गुरु, सद्गुरु, महान् उपदेशक, उत्पादक, संहारक- कुछ भी मानकर उनकी उपासना करना सबके लिये कर्त्तव्य है।

ब्रह्मा, विष्णु तथा शिव-ब्रह्म के इन तीनों रूपों के साथ भिन्न-भिन्न गुण सहज सुलभ होते हैं। जैसे-ब्रह्मा में सृष्टि तथा ब्रह्मविवेचन आदि का गुण, विष्णु में चराचर जगत् के पालन आदि का गुण तथा शिव में सृष्टि-उपरामता, जीवों के कर्मनाश आदि का गुण। शिवजी विकास-प्राप्त सृष्टि से

1. तुलसी के मानस में प्रकटित विचारों तथा यहाँ दिये जा रहे सन्दर्भों की विस्तृत जानकारी के लिये इसी पुस्तक के लेख 'रामायण ग्रन्थों में शिवतत्त्व' को पढ़ें।)

सम्बन्ध नहीं रखते, क्योंकि इसके प्रादुर्भूत होने में जीवों को आदि से अन्ततक कष्ट ही मिलता है।[1]

शिव के एकान्तवास का एक प्रधान कारण यह है कि वे प्रादुर्भूत सृष्टि के किसी कार्य से संबंध नहीं रखते। सृष्टि से संबंध न रखनेपर भी वे दुःखी जीवों का कर्मनाश करने में सदैव उद्यत रहते हैं। यहाँ शंका उठ सकती है कि यदि शिवजी अकारण कर्म-नाश करते हैं तो कर्म-सिद्धान्त का विरोध हो जाता है। बिना कर्मों के भोग के जीव को छुटकारा कैसे मिल जायगा? इसका उत्तर यह है कि यदि कोई बालक मार्ग में थक जाता है तो उसके माता-पिता उसे कन्धे पर चढ़ा लेते हैं। फिर बालक को मार्ग-कष्ट नहीं होता, उसके स्थान में पिता को कष्ट होता है। ऐसा करने से मार्ग और मार्ग-गमन-कष्ट में भेद नहीं पड़ता, पर बालक कष्ट से बच जाता है। इसी प्रकार सर्वसमर्थ प्रभु जीव के कष्टों को स्वयं वहन करके सृष्टि के नियम एवं व्यवस्था को ज्यों-की-त्यों रक्षा करते हुए उसे सुखी कर देते हैं। ऐसा करने का कारण यह है कि वह माया-विस्तार की व्यवस्था में कोई भाग नहीं लेते प्रत्युत उसे कष्टप्रद समझते हैं। सृष्टि के विकास की प्रक्रिया में जो जीव उनके सम्मुख आता है वे उसे कर्मभोग से मुक्तकर उसके स्थान में स्वयं कष्ट सहन करते हैं। इसी कारण से वह एकान्त में उदासीन, सामाधिमग्न एवं संसार से अलग रहते हैं।

यहाँ पर पुनः यह शंका होती है कि यदि जीव के बदले में वह स्वयं कष्ट भोगते हैं तो क्या वह जीवकोटि में नहीं आ जाते? समाधान है कि समुद्र में समुद्र नहीं डूब सकता, अन्य जीव डूबते हैं। दूसरे, यदि कोई डूब रहा हो और समुद्र अपनी प्रबल लहरों द्वारा उसे किनारे पहुँचा दे तो ऐसा करने से समुद्र को क्या विकार उत्पन्न हो सकता है? यह तो उसका प्रतिक्षण का कार्य है। जब शिवजी सारी सृष्टि का एक पलमात्र में नाश कर सकते हैं तब किसी जीव के किसी कर्म का नाश क्यों नहीं कर सकते? यदि विशेष जीव के कर्मों का नाश शिवजी नहीं कर सकते तो सारी सृष्टि का नाश वे कैसे कर सकते हैं? अतः वह कर्मों का नाश कर सकते हैं और सबके दुःखों को सहन करते हुए विकट वेष में रहते हैं।[2]

क्या शिवजी जीवों के कष्टों को स्वयं सहन न करके ऐसे ही उनका नाश नहीं कर सकते? कर सकते हैं, पर वैसा करने पर उसी के साथ सृष्टि का नाश हो जायगा। जैसे सूत के बण्डल का एक

---

1. जब एक बार ब्रह्माजी ने रुद्रदेव को सृष्टि करने का निवेदन किया तो उन्होंने अपने जैसे अमर एवं जरामरण से रहित शक्तिशाली जीवों की रचना कर दी। इसे देख ब्रह्माजी घबराये और ऐसी सृष्टि रोकने के लिये कहा। इसपर शिवजी ने उत्तर दिया कि मैं जरा-मरणयुक्त दुःखी जीवों की सृष्टि नहीं कर सकता। शिव का स्वभाव ही ऐसा है कि वे लोगों का दुःख नहीं देख सकते। शिव द्वारा सृष्ट अमरप्राणी ही रुद्रगण कहलाते हैं। (शिवपुराण, रुद्रसंहिता सृष्टिखण्ड अ. 15)

2. सागर-मन्थन से निकले हलाहल की ज्वाला से जगत् की रक्षा के लिये उन्होनें स्वयं कष्ट सहते हुए उसका पान कर लिया तथा चराचर जगत् को भयमुक्त किया।

भाग उलझ गया है तो उसे सुलझाना पड़ेगा और उसे सुलझाने में सुलझानेवाले को कष्ट सहन करना अनिवार्य होगा। यदि वह ऐसा नहीं करता वरन् उसे तोड़ता है तो सूत के बण्डल में कमी आने से उसके द्वारा निश्चित कार्य का सम्पादन न होगा। अतः दो बुराईयों में से कम बुराई को चुनना अच्छा है। जीवविशेष के कष्टों के लिये सृष्टि का नाश नहीं किया जा सकता।

श्रीशिवजी आशुतोष नाम से महादयालु होने के लिये प्रसिद्ध हैं। देखिये, जिनसे सब घृणा करते हैं उन्हीं को यह अपनाते हैं– जैसे सर्प, भूत, पिशाच। वह अपमानित को मान देते हैं, जिनको कहीं ठिकाना नहीं, उनको अपनी कृपा से अनेक ठिकानों का स्वामी बना देतें हैं। उपरोक्त सब बातों से यह शंका उठ सकती है कि शिवजी की भाँति अकारण कृपा विष्णुजी करते है कि नहीं? वे भी अवश्य करते हैं, पर जीवों के कर्मों का ध्यान रखते हुए करते हैं। जैसे किसी मनुष्य को फोड़ा हुआ है, उससे उसको असह्य वेदना हो रही है। वह चिकित्सक के पास गया। उसने फोड़े को चीर डालने का निश्चय किया और रोगी के फोड़े की जगह को संज्ञाशून्य बना दिया। फोड़े को चीर कर पट्टी बाँध दी। किन्तु चीरने का दुःख रोगी को नहीं हुआ क्योंकि चिकित्सक ने उस जगह को पहले ही संज्ञाशून्य बना दिया था। अतः श्रीविष्णु कर्मभोग कराते हुए कृपा करते हैं। पर जिनके ऊपर उनकी कृपा होती है उसको कर्मभोग में कष्ट नहीं मिलता। ऐसा करने का कारण उनका सृष्टि के पालन से सम्बन्ध रखना है। यदि ऐसा न किया जाय तो संसारचक्र की गति में विघ्न आ जाय। किन्तु शिवजी सृष्टि के नियमों के पालन की चिन्ता किसी जीव के ऊपर कृपा करने में नहीं रखते, क्योंकि वह सृष्टि के संबंध से परे हैं।[1]

कल्पना कीजिये कि एक स्त्री चक्की में गेहूँ पीस रही है। इतने में एक दूसरी स्त्री आयी, उसने चक्की के बीच में एक मोटी और ऊँची लोहे की कील घुसेड़ दी जिससे ऊपर और नीचे के तले में अन्तर पड़ गया, पर चक्की, ज्यों की त्यों गमनशील है। इतना अवश्य है कि उस कील पर रगड़ लगती है पर वह पहले की भाँति चल रही है। इतने में जो गेहूँ चक्की के भीतर है, किसी पदार्थ द्वारा बाहर खींच लिया और कील को भी हटा लिया। इसी प्रकार शिवजी की कृपा विशेष रूप से होती है और संसारचक्र में बाधा नहीं पड़ती।

उपसंहार

परमतत्त्व या ब्रह्म एक ही है जिसके निर्गुण एवं सगुण दो रूप है। इस परम तत्त्व के महाविष्णु या विष्णु, सदाशिव या शिव, कृष्ण, राम, देवी या महामाया, गणपति या गणेश, सूर्यदेव, हरि, हर आदि अनन्त नाम हैं। वही परमतत्त्व अपनी माया का आश्रय लेकर सगुण हो ब्रह्मा, विष्णु, रुद्र या शिव आदि देवताओं तथा समस्त चराचर के असंख्य नाम–रूपों में अपने को व्यक्त करता है। अतः तात्त्विक दृष्टि से सभी प्रमुख देवों में एकता है परन्तु सृष्टिकार्य में उन सबकी अलग–अलग भूमिका है। इन प्रमुख

1. रामचरित मानस में नारदजी पार्वती के भावी पति के संदर्भ में हिमालय से कह रहे हैं कि –

भाविउ मेटि सकहिं त्रिपुरारी।। (बालकां. 69/3)

इसका भाव यह है कि भगवान् शिव प्रारब्ध अर्थात् कर्मों के फल को मिटा सकते हैं।

देवों में न कोई छोटा है न बड़ा। भक्त अपनी-अपनी रुचि के अनुसार ब्रह्म के किसी भी रूप को अपना सकता है। ब्रह्म के सभी रूपों की अलग-अलग विशेषतायें होती हैं। भगवान् शिव की विशेषता यह है कि वे आशुतोष एवं अवढर दानी हैं। भक्तों पर कृपा करते समय वे सृष्टि के नियमों से बँधे भी नहीं रहते जैसा कि अन्य देव बँधे रहते हैं। वे लोगों के कर्मों को स्वयं अपने भुगतकर लोगों को कष्टों से मुक्त करा देते हैं। अतः इन विशेषताओं के कारण भगवान् शिव की उपासना का आर्कषण सबसे बढ़कर है।

S S S S S S S S S

गुरु का महत्त्व

जनकजी कहते हैं-

न विना ज्ञानविज्ञाने मोक्षस्याधिगमो भवेत्।
न विना गुरुसंबंधाज्ज्ञानस्याधिगमस्तथा।

(नार. महापु. पूर्वखण्ड 59/19)

अर्थात्-विना ज्ञान-विज्ञान के मोक्ष की प्राप्ति संभव नहीं है, और न ही विना गुरु के संबंध के ज्ञान-विज्ञान की प्राप्ति।

सर्वेषामेव लोकानां यथा सूर्यः प्रकाशकः।
गुरुः प्रकाशकस्तद्वच्छिष्याणां बुद्धिदानतः।।

(पद्ममहापु. भूमिखण्ड 85/8)

जैसे सूर्य सम्पूर्ण लोकों को प्रकाशित करते हैं, उसी प्रकार गुरु शिष्यों को उत्तम बुद्धि देकर उनके अन्तर्जगत् को प्रकाशपूर्ण बनाते हैं।

भूतलपर प्रकट हुए जल से बाहर का ही सारा मल नष्ट होता हैं; किन्तु गुरुरूपी तीर्थ जन्म-जन्मान्तर के पापों का भी नाश कर डालता है। संसार में जीवों का उद्धार करने के लिये गुरु चलता-फिरता उत्तम तीर्थ है।

स्थलजाच्चोदकात् सर्वं बाह्यं मलं प्रणश्यति।।
जन्मान्तरकृतान्पापान् गुरुतीर्थं प्रणाशयेत्।
संसारे तारणायैव जङ्गमं तीर्थमुत्तमम्।।

(पद्ममहापु. भूमिखण्ड 123/52-53)